तात्पर्य

सांख्य का उद्देश्य जीवन की आत्मा को प्राप्त करना है। परमात्मा विष्णु ही प्राकृत-जगत् की आत्मा हैं। भक्तियोग का अर्थ उन्हीं परमात्मा की सेवा करना है। परमार्थ की एक पद्धति में वृक्ष के मूल का अन्वेषण किया जाता है, जबकि दूसरी में जल से उसका अभिसिञ्चन किया जाता है। सांख्यदर्शन का यथार्थ विद्यार्थी जगत् के मूल—श्रीविष्णु को जानकर और फिर पूर्ण ज्ञान से युक्त होकर उनकी सेवा में प्रवृत्त हो जाता है। सारांश में, दोनों पद्धतियों में कोई भेद नहीं है, क्योंकि दोनों के आराध्य श्रीविष्णु हैं। अतएव परम लक्ष्य को न जानने वाले मनुष्य ही सांख्य तथा कर्मयोग के प्रयोजन में भेद करते हैं। यथार्थ पण्डितजन इन पृथक्-पृथक् पद्धतियों के समीकृत (एकाकार) लक्ष्य को जानते हैं।

14/5

यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते।
एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति।।५।।

यत् =जो; **सांख्यैः** =सांख्य दर्शन द्वारा; **प्राप्यते** =प्राप्त होता है; **स्थानम्** =स्थान; **तत्** =वह; **योगैः** =भक्तियोग से; **अपि** =भी; **गम्यते** =प्राप्त होता है; **एकम्** =एक; **सांख्यम्** =सांख्य; **च** =तथा; **योगम्** =भक्तिभावित कर्म को; **च** =तथा; **यः** =जो; **पश्यति** =देखता है; **सः** =वही; **पश्यति** =यथार्थ में देखता है।

अनुवाद

जो यह जानता है कि संन्यास से प्राप्त होने वाला स्थान भक्तिभावित कर्म से भी प्राप्त हो सकता है और इसलिए जो कर्मयोग तथा संन्यासपथ को एक देखता है, वही यथार्थ देखता है।।५।।

तात्पर्य

दार्शनिक गवेषणा का यथार्थ प्रयोजन जीवन के परम लक्ष्य को पाना है। जीवन का परम लक्ष्य स्वरूप-साक्षात्कार है; इसलिए दोनों पद्धतियों से एक ही तत्त्व की उपलब्धि होती है। सांख्यदर्शन से यह निर्णय होता है कि जीवात्मा प्राकृत-जगत् का नहीं, वरन् अंशी श्रीभगवान् का भिन्न-अंश है। अतएव आत्मा का प्राकृत-जगत् से कुछ भी प्रयोजन नहीं है, उसके कर्म श्रीभगवान् से ही सम्बद्ध होने चाहिए। जब वह कृष्णभावनाभावित कर्म करता है, तो अपने यथार्थ स्वरूप में रहता है। सांख्यरूपी साधन में प्रकृति से अनासक्त होना होता है और भक्तियोग की पद्धति में श्रीकृष्ण की प्रीति के लिए कर्मों में आसक्ति का सेवन करना है। अतः दोनों पद्धतियाँ एक ही हैं। केवल बाह्य दृष्टि से लगता है कि एक पद्धति में अनासक्ति का अभ्यास करना है और दूसरी में आसक्ति का। प्रकृति से अनासक्ति तथा श्रीकृष्ण में आसक्ति एक ही वस्तु है। जो इस दृष्टि से युक्त है, वही यथार्थ तत्त्वदर्शी है।

14/5

संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः।
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म नचिरेणाधिगच्छति।।६।।